International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 15 Issue 10 || October 2026 || PP. 87-91

मत्स्यपुराण के पण्यस्त्रीव्रत में स्त्री की धार्मिक पात्रता एवं सामाजिक स्थिति: एक आलोचनात्मक अनुशीलन

कविता
संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक,124001

सारांश

मत्स्यपुराण के सत्तरवें अध्याय में वर्णित पण्यस्त्रीव्रत स्त्री की धार्मिक भागीदारी और सामाजिक स्थिति के संबंध में जटिल प्रश्न प्रस्तुत करता है। इस प्रकरण में बलपूर्वक अपहृत स्त्रियों को धर्माचरण का मार्ग बताया गया है, किन्तु उनकी सामाजिक पहचान, शुद्धि की अपेक्षा और अनुष्ठान की शर्तें पितृसत्तात्मक व्यवस्था से भी जुड़ी हैं। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह देखना है कि पण्यस्त्री को पूजा, दान और व्रत का अधिकार किन परिस्थितियों में दिया गया है तथा कथानक इस धार्मिक पात्रता को किस प्रकार सीमित करता है। शोध में मत्स्यपुराण के अध्याय ७० के उपलब्ध संस्कृत पाठ का निकटपाठ किया गया है; चैताली कड़िया, कुमकुम राय और उमा चक्रवर्ती के अध्ययनों से सामाजिक संदर्भ और विश्लेषण की दृष्टि ग्रहण की गई है। निष्कर्ष यह है कि पण्यस्त्री का अनुष्ठानिक अधिकार पाठ में स्पष्टतः स्वीकार होता है, पर इसे आधुनिक अर्थों में समान सामाजिक या शारीरिक स्वायत्तता का प्रमाण नहीं माना जा सकता। व्रत के फलवचन और उसकी आचरण-संबंधी शर्तों को साथ पढ़ने से पुराणीय धर्मव्यवस्था के भीतर समावेशन और नियंत्रण का अंतर्विरोध सामने आता है।

मुख्य शब्द: मत्स्यपुराण, पण्यस्त्रीव्रत, अनङ्गदानव्रत, धार्मिक पात्रता, स्त्री-अधिकार, सामाजिक पदक्रम, पाठालोचना।

१. प्रस्तावना

पुराणों में व्रत के विवरण पूजा-सामग्री और फलश्रुति तक सीमित नहीं रहते। उनमें यह भी बताया जाता है कि व्रत कौन कर सकता है, धार्मिक मार्गदर्शन किससे प्राप्त होगा तथा अनुष्ठान की प्रतिष्ठा किन सामाजिक संबंधों पर निर्भर करेगी। इसलिए व्रतविधान का अध्ययन धर्म और समाज के पारस्परिक संबंध की जाँच का अवसर देता है। मत्स्यपुराण के सत्तरवें अध्याय में यह प्रश्न विशेष रूप से उपस्थित है, क्योंकि यहाँ जिन स्त्रियों को उपदेश दिया जाता है, वे पहले से सामाजिक अपमान और पराधीनता की परिस्थिति में हैं। उनसे पूछा नहीं जाता कि वे अपनी स्थिति को कैसे समझती हैं; फिर भी वे ऋषि से प्रश्न करती हैं और धार्मिक उपाय जानने की इच्छा व्यक्त करती हैं (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक १२–१९)।

इस प्रकरण को सामान्यतः पण्यस्त्रीव्रत के नाम से पहचाना जाता है, जबकि एक मुद्रित परंपरा के अध्यायांत में 'अनङ्गदानव्रत' नाम मिलता है। दोनों पदों के संकेत अलग हैं: पहला व्रत करने वाली सामाजिक श्रेणी की ओर ध्यान दिलाता है और दूसरा कामदेवस्वरूप विष्णु की उपासना तथा दान की ओर। वर्तमान शोध में इन नामों को परस्पर विरोधी मानने के बजाय कथानक और कर्मविधान के दो स्तरों के रूप में समझा गया है। प्रमुख प्रश्न यह है कि धर्म में प्रवेश का यह अवसर स्त्री को कितना स्थान देता है और किस सीमा तक उसे पूर्वनिर्धारित पुरुष-अधिकार के अधीन रखता है।

२. शोध-समस्या, उद्देश्य और पद्धति

अनुशीलन की मुख्य समस्या धार्मिक पात्रता और सामाजिक प्रतिष्ठा के बीच अंतर स्पष्ट करना है। किसी स्त्री को पूजा करने की अनुमति मिलना उसके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार, स्वाधीन आजीविका या निर्णय का अधिकार मिलने के समान नहीं है। इस भेद को स्पष्ट करने के लिए चार प्रश्न रखे गए हैं। पण्यस्त्रियों की स्थिति का कथात्मक कारण क्या है? वे कौन-सी धार्मिक क्रियाएँ स्वयं कर सकती हैं? ब्राह्मण, दान और देह-संबंधी निर्देशों से शक्ति का कैसा संबंध बनता है? और फलश्रुति उनके वर्तमान सामाजिक जीवन को बदलती है या मुख्यतः भविष्य के आध्यात्मिक फल का आश्वासन देती है?

अध्ययन गुणात्मक और पाठ-आधारित है। प्राथमिक स्रोत के रूप में १९५४ के चौखम्बा विद्याभवन संस्करण पर आधारित उपलब्ध मत्स्यपुराण-पाठ तथा अध्याय ७० का संस्कृत विकिस्रोत-पाठ लिया गया है। आंतरिक साक्ष्य को कथा, विधि, दान और फलवचन के क्रम में पढ़ा गया है। आधुनिक सामाजिक विमर्श के लिए राय (१९९९), चक्रवर्ती (२००३) और कड़िया (२०२१) के कार्यों को संदर्भ-बिंदु बनाया गया है। यहाँ इन अध्ययनों को मूल श्लोक का विकल्प नहीं, उसकी आलोचनात्मक व्याख्या में सहायता के रूप में लिया गया है। उपलब्ध डिजिटल पाठों में सूक्ष्म शब्दभेद हैं; पाण्डुलिपियों का प्रत्यक्ष परीक्षण इस लेख का हिस्सा नहीं है।

३. पूर्ववर्ती शोध और विषय की विशिष्टता

मत्स्यपुराण में स्त्रियों और गणिकाओं की स्थिति पर कड़िया (२०२१) ने चर्चा की है। उनके अध्ययन में पण्यस्त्रीव्रत के साथ अन्य प्रसंगों में व्रत करने वाली अनङ्गवती और लीलावती का भी उल्लेख आता है। इससे यह पृष्ठभूमि मिलती है कि धार्मिक अनुष्ठान में भागीदारी की संभावना केवल आदर्श

गृहिणी की छवि तक सीमित नहीं थी। फिर भी किसी व्रत का उल्लेख सामाजिक सम्मान की समानता सिद्ध नहीं करता। संबंधित श्लोकों के भीतर ही देखने की आवश्यकता है कि स्त्री को श्रद्धालु, दानकर्त्री और सामाजिक रूप से नियंत्रित व्यक्ति के रूप में एक साथ कैसे प्रस्तुत किया गया है।

राय (१९९९) द्वारा सम्पादित प्राचीन भारतीय समाजों में स्त्रियों संबंधी अध्ययन सामाजिक इतिहास को अनेक स्तरों पर देखने की पृष्ठभूमि देते हैं। चक्रवर्ती (२००३) की नारीवादी ऐतिहासिक दृष्टि सामाजिक पदानुक्रम को नैतिक सहमति का स्वाभाविक परिणाम मानने के बजाय सत्ता-संबंधों के भीतर पढ़ने की प्रेरणा देती है। वर्तमान लेख का योगदान इन व्यापक प्रश्नों को मत्स्यपुराण के एक सीमित व्रतप्रकरण के शब्दों से जोड़ना है। यह पूरे पुराणकाल की स्त्रियों के जीवन का सांख्यिकीय प्रतिरूप नहीं है।

४. कथानक: शाप, अपहरण और स्त्री की स्थिति

अध्याय के आरंभ में ब्रह्मा सदाचार का विवेचन सुनने की इच्छा प्रकट करते हैं। इसके उत्तर में शिव कृष्ण की पत्नियों से जुड़ा प्रसंग बताते हैं। वसंत ऋतु के मनोरम परिवेश में साम्ब को देखने पर स्त्रियों के आकर्षण को कथानक शाप का कारण बनाता है। बाद में यदुवंश के विनाश और अर्जुन की असफल रक्षा के प्रसंग में स्त्रियाँ दस्युओं द्वारा अपहृत होती हैं। कथानक के क्रम में कामना, शाप और स्त्री की पराधीनता एक-दूसरे से जोड़ दिए गए हैं (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक २–१३)।

इस रचना को ऐतिहासिक घटना का निर्विवाद विवरण मानना उचित नहीं। यह पुराणीय आख्यान है, जहाँ नैतिक तर्क कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि अपहरण स्त्रियों की इच्छा के विरुद्ध होता है, फिर भी सामाजिक और धार्मिक चिंता उनकी 'धर्मच्युति' के रूप में प्रकट होती है। इसी असंगति में स्त्री की स्थिति का मूल तनाव है। हिंसा का कर्ता और उसके प्रभाव से प्रभावित व्यक्ति एक नहीं हैं, लेकिन कथानक की धार्मिक भाषा पीड़ित स्त्रियों की स्थिति को दोष और उद्धार की शब्दावली से भी बाँध देती है।

५. स्त्रियों के प्रश्न में धार्मिक अधिकार का संकेत

दाल्भ्य ऋषि के सामने उपस्थित स्त्रियाँ कहती हैं कि उनके साथ बलपूर्वक व्यवहार हुआ और वे अपने स्वधर्म से विचलित स्थिति में हैं। इसके बाद उनका प्रश्न है कि वेश्याओं का भी जो धर्म है, वह उन्हें बताया जाए। 'वेश्यानामपि यो धर्मः' के माध्यम से धार्मिक मार्ग जानने की मांग सीधे स्त्रियों की ओर से उठती है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक १७–१९)। यहाँ 'अपि' विशेष महत्त्व रखता है। यह पद संकेत देता है कि ऐसी सामाजिक श्रेणी के धर्म को स्पष्ट करने की जरूरत अनुभव की जा रही है जिसकी धार्मिक पात्रता सामान्य मान्यता में स्वयंसिद्ध नहीं थी।

फिर भी स्त्रियों का प्रश्न संपूर्ण स्वतंत्रता का उद्घोष नहीं है। वे अपनी धार्मिक स्थिति का निर्णय स्वयं घोषित नहीं करतीं; उसकी पुष्टि ऋषि के उपदेश से चाहती हैं। इस प्रकार संवाद में एक सीमित किन्तु वास्तविक सक्रियता उपस्थित है। वे सहायता मांगती हैं, तर्क का विषय बनती हैं और अनुष्ठान की संभावित कर्त्री भी हैं। उनकी वाणी को शून्य समझना पाठ के साथ न्याय नहीं होगा, लेकिन इस वाणी को आधुनिक अधिकार-दावे के बराबर रख देना भी कालगत अंतर मिटा देगा।

६. पण्यस्त्री और पुण्यस्त्री: आरंभिक पाठभेद

शोध की दृष्टि से अध्याय का प्रथम श्लोक उल्लेखनीय है। १९५४ के संस्करण पर आधारित संस्कृत पाठ में "पण्यस्त्रीणां सदाचारं" मिलता है, जबकि संस्कृत विकिस्रोत पर उपलब्ध १४ नवम्बर २०१९ को संशोधित पाठ में "पुण्यस्त्रीणां सदाचारं" पढ़ा जाता है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक १; संस्कृत विकिस्रोत, २०१९, अध्याय ७०, श्लोक १)। "पण्य" और "पुण्य" का अंतर सामाजिक अर्थ बदलता है। पण्य व्यापार या विनिमय से संबद्ध श्रेणी की ओर संकेत देता है, जबकि पुण्य सदाचार-संबंधी गुण का बोध कराता है।

आगे के श्लोकों में 'वेश्या', 'शुल्क' और 'वेश्याधर्म' जैसे पद आते हैं; इसलिए अध्याय के व्यापक कथ्य में पण्यस्त्री-संबंधी अर्थ स्पष्ट है। इसके बावजूद पहले श्लोक का मूल रूप केवल प्रसंग के आधार पर तय नहीं किया जा सकता। पाण्डुलिपियाँ और भरोसेमंद मुद्रित संस्करण देखकर ही निर्णायक पाठ-स्थापना संभव होगी। इस लेख में १९५४-आधारित पाठ का अनुसरण किया गया है, तथा भिन्न पाठ को दर्ज किया गया है। पाठालोचना की यही सावधानी सामाजिक अर्थ की व्याख्या को भी विश्वसनीय बनाती है।

७. देवासुर-कथा और सामाजिक पहचान का निर्धारण

ऋषि का उपदेश एक दूसरी कथा का सहारा लेता है। देवासुर-संघर्ष में मारे गए असुरों और राक्षसों की पत्नियों को बलपूर्वक ग्रहण किए जाने का उल्लेख आता है। उसके बाद उन्हें राजगृह तथा देवकुल में 'वेश्याधर्म' से जीवन-यापन करने की आज्ञा दी जाती है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक २६–२९)। एक प्रकार से वैवाहिक अथवा पारिवारिक सुरक्षा से वंचित स्त्रियों के लिए सामाजिक व्यवस्था की वैकल्पिक श्रेणी प्रस्तुत की गई है।

यह व्यवस्था कितनी न्यायपूर्ण थी, इसे अलग प्रश्न के रूप में उठाना जरूरी है। हिंसा के बाद स्त्री की इच्छा के आधार पर भूमिका चुनने का कोई व्यवस्थित विवरण पाठ नहीं देता। उसके लिए भूमिका का नामकरण देवाधिकार से होता है। राजगृह और देवकुल की उपस्थिति को सीधे आर्थिक सुरक्षा या धार्मिक प्रतिष्ठा का प्रमाण नहीं माना जा सकता। वे संरक्षण के संस्थान भी हो सकते हैं और नियंत्रण के स्थान भी। यह दोहरा अर्थ पुराणीय आख्यान के भीतर स्त्री को पढ़ने की आवश्यकता स्पष्ट करता है।

८. व्रत का काल, उपास्य और स्त्री की कर्तृता

विधान में रविवार को हस्त, पुष्य या पुनर्वसु नक्षत्र के संयोग का निर्देश है। स्त्री औषधियुक्त जल से स्नान करती है और 'पुण्डरीकाक्ष' भगवान् की कामदेवात्मक उपासना करती है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक ३३–३४)। यहाँ स्त्री को केवल श्रोता बनाकर नहीं छोड़ा जाता। वह तिथि का चयन, स्नान, अर्चना और दान का अनुष्ठान स्वयं करने वाली बताई गई है। धार्मिक पात्रता का सर्वाधिक ठोस साक्ष्य उसके लिए निर्दिष्ट ये क्रियापद हैं।

पूजा में देह के विभिन्न अंगों पर काम, मोह, प्रीति और आनंद से संबंधित नामों का न्यासात्मक स्मरण किया जाता है। इसके बाद शिव, नारायण और लक्ष्मी-संबंधी नाम भी आते हैं (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक ३५–४१)। अनङ्ग और विष्णु के संबोधनों का यह मेल केवल लौकिक आकर्षण का उत्सव नहीं है; यह कामना को धार्मिक अनुशासन की भाषा में संगठित करता है। किन्तु इस सांकेतिक अर्थ को ग्रंथ के स्पष्ट विधान से अलग पहचानना चाहिए। पाठ पूजा का क्रम देता है; प्रतीकों की विस्तृत आधुनिक व्याख्या शोधकर्ता की है।

९. दान देने वाली स्त्री: संपत्ति और सामर्थ्य

पण्यस्त्रियों से देवताओं और पितरों के पुण्य अवसरों पर गौ, भूमि, स्वर्ण तथा अन्न 'स्वशक्तितः' देने को कहा गया है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक ३१)। इस पद में आर्थिक सामर्थ्य का विचार मिलता है। धार्मिक निर्देश स्त्री को दान ग्रहण करने की निष्क्रिय वस्तु नहीं मानता; वह दान करने वाली व्यक्ति भी है। यह बात उस सामान्य धारणा को चुनौती देती है कि पुराणीय अनुष्ठानों में स्त्री की भूमिका सर्वत्र एक-सी अथवा केवल पति-पराश्रित है।

सामर्थ्य का उल्लेख वास्तविक संपत्ति-अधिकार, धन के स्रोत या उस पर स्थायी नियंत्रण का प्रमाण नहीं है। दान करने की क्षमता और संपत्ति रखने का विधिक अधिकार अलग प्रश्न हैं। कड़िया (२०२१) ने मत्स्यपुराण के अन्य प्रसंगों में गणिकाओं की दानशीलता को नोट किया है। किंतु सभी पण्यस्त्रियाँ आर्थिक रूप से सम्पन्न थीं, ऐसा सामान्यीकरण उचित नहीं। पाठ एक आदर्श आचरण का निर्देश देता है; वह समकालीन समाज का सर्वेक्षण नहीं प्रस्तुत करता।

१०. ब्राह्मण-केंद्रित विधि और शक्ति-संबंध

देवपूजा के बाद वेदज्ञ और धर्मज्ञ ब्राह्मण को बुलाकर उसका सत्कार तथा चावल और घी का दान करना बताया गया है। दान के समय माधव की प्रसन्नता की कामना की जाती है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक ४२–४४)। इस क्रम में स्त्री और ब्राह्मण के बीच धार्मिक संबंध निर्मित होता है। स्त्री अनुष्ठान का आयोजन करती है, पर उसके पुण्य की धार्मिक स्वीकृति ब्राह्मण की उपस्थिति और सेवा के साथ जुड़ जाती है।

सबसे कठिन प्रश्न अगले श्लोक में है, जहाँ ब्राह्मण की इच्छा पूरी करने और 'सर्वभावेन चात्मानमर्पयेत्' का निर्देश मिलता है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक ४५)। इस वाक्य को केवल सौजन्य या प्रतीकात्मक भक्ति मानकर छोड़ना पाठ के तनाव को ढक देगा। दूसरी ओर इसके प्रत्येक ऐतिहासिक व्यवहार का निश्चित रूप बिना अतिरिक्त प्रमाण निर्धारित करना भी उचित नहीं। सावधान पाठ से इतना स्पष्ट है कि धार्मिक विधान में स्त्री के समर्पण की अपेक्षा व्यक्त होती है और बराबरी के आधार पर उसकी सहमति का स्वतंत्र उल्लेख नहीं है। इस असमानता को आलोचनात्मक विश्लेषण का केंद्र बनाना आवश्यक है।

११. तेरह मास का नियम और अनुष्ठानिक श्रम

व्रत की पुनरावृत्ति तेरह मास तक बताई गई है। तेरहवें मास में सुसज्जित शय्या, दीप, छत्र, पादुका, वस्त्र और अन्य सामग्री दान करने तथा कामदेव-रति से संबंधित प्रतिमा का पूजन कराने का विधान मिलता है। साथ में एक दुग्धवती गौ के दान का निर्देश है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक ४६–५५)। इससे स्पष्ट है कि यह क्षणिक धार्मिक उपाय नहीं है। निरंतर समय, सामग्री और संसाधन जुटाने की व्यवस्था इसके भीतर निहित है।

अनुष्ठान का लंबा काल आर्थिक तथा शारीरिक श्रम को बढ़ाता है। ऐसी स्थिति में व्रत का पालन अपेक्षाकृत सम्पन्न स्त्री के लिए संभव हो सकता है, जबकि संसाधनहीन स्त्री के लिए उसका भार अलग होगा। ग्रंथ में सामर्थ्य के अनुसार आचरण का उल्लेख इस अंतर को पूरी तरह समाप्त नहीं करता। यहाँ धार्मिक पात्रता औपचारिक रूप से दिखाई देती है, किंतु उपलब्ध साधनों के अंतर से उसकी वास्तविक व्यवहारिकता बदल सकती है। इसलिए अनुष्ठानिक समावेशन का मूल्यांकन करते समय संसाधनों की असमानता भी देखनी होगी।

१२. देह, श्रम और सामाजिक नियंत्रण

कथानक में स्त्री का शरीर शाप और अपहरण की घटना से लेकर व्रत के समर्पण-विधान तक बार-बार धार्मिक विवेचन का विषय बनता है। अपहरण से उत्पन्न संकट में पुरुष हिंसा के लिए स्पष्ट दंड की विस्तृत चर्चा नहीं मिलती; अधिक ध्यान स्त्रियों के धर्माचरण को पुनर्संगठित करने पर है। इससे पाठ के नैतिक केंद्र का संकेत मिलता है। एक ओर शरीर की असुरक्षा सामाजिक विडंबना है, दूसरी ओर उसका समाधान धार्मिक अनुशासन द्वारा परिभाषित किया जाता है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक १७–१९, ४४–४५)।

चक्रवर्ती (२००३) की शक्ति-केंद्रित नारीवादी दृष्टि ऐसे पाठों में 'व्यवस्था' और 'अनुशासन' के संबंध पर प्रश्न उठाने का आधार देती है। वर्तमान अध्याय से किसी एक समय के वास्तविक यौन-व्यापार की संस्थागत संरचना का पूरा इतिहास नहीं लिखा जा सकता। फिर भी यह देखा जा सकता है कि स्त्री के सामाजिक वर्गीकरण, धार्मिक शुद्धता और ब्राह्मण के प्रति दायित्व को एक व्यवस्था में रखा गया है। इस व्यवस्था में स्त्री के पास क्रियाशीलता है, पर उसके निर्णय की सीमा पाठ स्वयं निर्धारित करता है।

१३. फलश्रुति: नैतिक स्वीकृति और भविष्य का आश्वासन

अध्याय के अंतिम भाग में व्रत को पापशमनकारी और अनंत फल देने वाला बताया गया है। इसका विधिपूर्वक पालन करने वाली स्त्री को विष्णुलोक की प्राप्ति तथा देवताओं से सम्मान का आश्वासन मिलता है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक ६०–६४)। यह फलश्रुति स्त्री को धर्म से सर्वथा बहिष्कृत नहीं करती। सामाजिक रूप से निम्न मानी गई श्रेणी की स्त्री के लिए भी आध्यात्मिक लक्ष्य का मार्ग बताया जाता है। इसी कारण इस प्रकरण को केवल निषेध का पाठ समझना अधूरा होगा।

परंतु फल की स्थिति पर गौर करना जरूरी है। अध्याय वर्तमान जीवन में सामाजिक अपमान समाप्त होने या स्त्री की इच्छानुसार आजीविका बदलने का स्पष्ट आश्वासन नहीं देता। प्रमुख फल धार्मिक उद्धार और परलोकगत प्रतिष्ठा है। यहाँ समावेशन आध्यात्मिक क्षितिज में अधिक स्पष्ट है, जबकि सामाजिक परिस्थिति का परिवर्तन अनिश्चित रहता है। दूसरे शब्दों में, व्रत की स्वीकृति एक धार्मिक अवसर प्रस्तुत करती है; वह सामाजिक समानता का पूरा कार्यक्रम नहीं बनती।

१४. समानता, समावेशन और 'अधिकार' की सीमा

धार्मिक पात्रता की चर्चा में 'अधिकार' शब्द को सावधानी से लेना चाहिए। मत्स्यपुराण का अध्याय स्त्री के लिए व्रत का विधान देता है, लेकिन आधुनिक संवैधानिक अर्थ में समान नागरिक अधिकारों की घोषणा नहीं करता। इस पाठ में पूजा करने की पात्रता, दान करने की क्षमता, ज्ञान लेने की इच्छा और मुक्ति की संभावना मौजूद हैं। साथ ही जाति-आधारित अनुष्ठानिक पदक्रम, ब्राह्मण के प्रति दायित्व तथा स्त्री के लिए निर्धारित आचरण भी उसी पाठ का हिस्सा हैं। इस द्वंद्व को स्वीकार किए बिना निष्कर्ष एकतरफा रह जाएगा।

राय (१९९९) के सम्पादित अध्ययनों से यह दृष्टि मिलती है कि 'प्राचीन भारतीय स्त्री' को एक अविभाजित श्रेणी नहीं माना जाना चाहिए। गृहिणी, गणिका, विधवा और अन्य सामाजिक स्थितियों में धार्मिक अवसर एवं बंधन भिन्न हो सकते हैं। प्रस्तुत प्रकरण में 'पण्यस्त्री' नाम का उपयोग ही सामाजिक श्रेणी-विशेष को संकेतित करता है। अतः इस व्रत की धार्मिक पात्रता उस स्त्री की विशिष्ट स्थिति के संदर्भ में समझी जानी चाहिए, न कि स्त्री-समुदाय की सर्वकालिक समान स्थिति के रूप में।

१५. पाठालोचनात्मक सीमाएँ और आगे का शोध

मूल पाठ की व्याख्या करते समय दो स्तरों पर सावधानी आवश्यक है। पहला, डिजिटल प्रतिलिपियों के अंतर को तुरंत ऐतिहासिक पाठभेद मान लेना उचित नहीं। 'पण्यस्त्रीणां' और 'पुण्यस्त्रीणां' के अंतर के साथ अन्य स्थानों पर वर्तनी, संयुक्ताक्षर और पद-विभाजन भी बदल सकते हैं। दूसरा, विभिन्न आधुनिक अनुवादों की नैतिक शब्दावली मूल संस्कृत का स्थानापन्न नहीं बन सकती। पाठ में 'बलात्' आने पर उसके अर्थ को स्पष्ट करना चाहिए, किंतु उससे पूरे समाज का घटनाक्रम सिद्ध नहीं हो जाता (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक १७; संस्कृत विकिस्रोत, २०१९, अध्याय ७०)।

आगे के अनुसंधान में चौखम्बा-आधारित पाठ, गीताप्रेस के मुद्रित पाठ और उपलब्ध पाण्डुलिपियों का पदवार मिलान किया जा सकता है। विशेष ध्यान अध्याय के शीर्षक, प्रथम श्लोक, श्लोक ४५ के समर्पण-विधान तथा श्लोक ५८–५९ के कठिन पाठ पर देना उपयोगी होगा। साथ ही दूसरे पुराणों में गणिकाओं से जुड़े व्रतों की तुलना करने पर यह समझ विकसित हो सकती है कि धार्मिक पात्रता का यह रूप स्थानीय अथवा पाठ-परंपरागत विशिष्टता है या व्यापक पुराणीय प्रवृत्ति। वर्तमान लेख के निष्कर्ष इन संभावित प्रश्नों के अंतिम उत्तर नहीं हैं।

१६. निष्कर्ष

मत्स्यपुराण का पण्यस्त्रीव्रत स्त्री की धार्मिक पात्रता के प्रश्न पर एकसाथ दो प्रकार के साक्ष्य प्रस्तुत करता है। स्त्री स्नान करती है, देवपूजा करती है, धार्मिक प्रश्न पूछती है, दान देती है और व्रत के फल की पात्र बताई जाती है। यह उपस्थिति महत्त्वपूर्ण है। विशेषकर 'वेश्यानामपि यो धर्मः' और 'अधर्मोऽयं ततो न स्यात्' जैसे पद उस सामाजिक श्रेणी को धर्म के दायरे में संबोधित करते हैं जिसे प्रायः नैतिक संदेह से देखा गया है (मत्स्यपुराणम्, १९५४, अध्याय ७०, श्लोक १९, ६०)।

इसी के साथ व्रतविधान ब्राह्मण-केंद्रित सेवा, संसाधन-आधारित दान और स्त्री से अपेक्षित समर्पण को भी प्रतिष्ठित करता है। अपहरण का अनुभव उसके धार्मिक 'पतन' की कथा में समाहित हो जाता है। अतः धार्मिक प्रवेश को स्वतः सामाजिक सम्मान, शारीरिक स्वायत्तता या समान निर्णय-अधिकार के बराबर नहीं रखा जा सकता। इस अध्याय की आलोचनात्मक महत्ता इसी जटिलता में है: वह पण्यस्त्री के लिए उद्धार का मार्ग खोलता है, किन्तु उसकी शर्तों में सामाजिक विषमता के संकेत भी सुरक्षित रखता है।

संदर्भ सूची

कड़िया, चैताली. (२०२१). मत्स्यपुराण में गणिकावृत्ति [मूल अंग्रेजी शोध-अध्ययन के अनुभाग के शीर्षक का हिंदी रूपांतर]. विजडम लाइब्रेरी. https://www.wisdomlib.org/hinduism/essay/historical-elements-in-the-matsya-purana/d/doc1240067.html

चक्रवर्ती, उमा. (२००३). जाति और लैंगिकता: एक नारीवादी दृष्टि [मूल अंग्रेजी पुस्तक के शीर्षक का हिंदी रूपांतर]. स्त्री प्रकाशन. https://find.uoc.ac.in/Record/195649

मत्स्यपुराणम्. (१९५४). पण्यस्त्रीव्रत (अध्याय ७०) [चौखम्बा विद्याभवन संस्करण पर आधारित संस्कृत डिजिटल पाठ]. चौखम्बा विद्याभवन. https://library.livingbliss.org/puranas/matsya/70

राय, कुमकुम (सम्पा.). (१९९९). प्रारम्भिक भारतीय समाजों में स्त्रियाँ [मूल अंग्रेजी पुस्तक के शीर्षक का हिंदी रूपांतर]. मनोहर प्रकाशक. https://wellcomecollection.org/works/nss67rq6

संस्कृत विकिस्रोत. (२०१९, १४ नवम्बर). मत्स्यपुराणम्: अध्याय ७० [संस्कृत डिजिटल पाठ; वेबपृष्ठ की अंतिम संशोधन तिथि]. https://sa.wikisource.org/wiki/मत्स्यपुराणम्/अध्यायः_७०